जनसत्ता 20 मई, 2014 : मैंने देश के करोड़ों लोगों की तरह अपने क्षेत्र के भारतीय जनता पार्टी के

उम्मीदवार को और परोक्ष रूप से नरेंद्र मोदी को वोट नहीं दिया। मतदाता के रूप में किसी का भी यह अधिकार है कि भले ही कोई दल या गठबंधन स्पष्ट रूप से सत्ता में आता दिख रहा हो, फिर भी उसे वह वोट न दे, किसी और को वोट दे या फिर 'नोटा' दबा। उसे यह भी अधिकार है कि वह चाहे तो वोट देने के बाद अपने वोट की गोपनीयता को बना रखे या उसे खुद भंग कर दे या वोट देने से पहले वोट देने का अपना इरादा किसी को बता या न बता या यहां तक कि अंत समय में अपने इरादे से पलट जा।

यों भी, कोई कितना ही बड़ा राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर का लोकप्रिय नेता या दल हो, भले ही उसके पक्ष में लहर ही क्या, सुनामी तक चल रही हो (जैसा कि इस बार नरेंद्र मोदी और भाजपा के बारे में बताया गया है), उसे देश भर में वोट न करने वालों का प्रतिशत वोट करने वालों से अक्सर ज्यादा बड़ा ही होता है। ऐसे मतदाता उसकी विचारधारा, उसके आचरण, उसकी कार्यप्रणाली से स्थायी या अस्थायी रूप से असहमत हो सकते हैं। और ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए, जो कि पहले भी कई बार हुआ है। इसी प्रकार, इस बार भी मेरे जैसे करोड़ों मतदाताओं के पक्ष में वोट न देने के बावजूद मोदी प्रधानमंत्री बन रहे हैं। इतना ही नहीं, तीस बरस बाद कोई एक दल अपने बूते सरकार बनाने की स्थिति में आ चुका है। उम्मीद है कि पांच साल तक यह सरकार चलेगी और 2019 में फिर से मोदीजी लोगों से अपनी सरकार को वोट देने को कहेंगे, अगर लोकतंत्र जैसा अब तक चलता आया है, तमाम आशंकाओं के विपरीत उसी तरह चलता रहता है तो!

लेकिन मेरी तरह करोड़ों मतदाता भारी बहुमत प्राप्त इस सरकार के आगे झुकने क्यों लगें? क्या इसलिए कि इसे बहुमत प्राप्त है? क्या इस आधार पर किसी दल या गठबंधन से असहमत होने का अधिकार छिन जाता है? बहुमत सरकार चलाने के लिए दिया जाता है, हर तरह के विरोधी विचारों को कुचलने के लिए नहीं, अगर उनके प्रचार-प्रसार के लिए अलोकतांत्रिक तरीकों का इस्तेमाल नहीं किया जा रहा है तो, जिनका कि इस्तेमाल भाजपा के सहयोगी संगठन अक्सर पहले भी करते रहे हैं और ऐसी आशंका है कि अब और भी करेंगे। जिन्हें इस सरकार से आशा है, वे जरूर पालें। उनसे भी यह अधिकार कोई छिन नहीं रहा है। मगर हमारा अधिकार भी छीनने का अधिकार किसी को नहीं है। हम अगर पूर्वाग्रहग्रस्त हैं तो ऐसा होना भी हमारा अधिकार है, जब तक कि हम खुद इस पर विचार करने के लिए बाध्य न हों।

हमारे विरोध के बावजूद जो सरकार जनसमर्थन से अस्तित्व में आई है, हमारा उससे सहमत होना क्यों अनिवार्य है, जैसा कि बुद्धिजीवियों का एक वर्ग शायद अब समझ रहा है। अभी मुंबई से एक मित्र ने बताया कि वहां के एक बड़े अखबार में हिंदी के जिन बुद्धिजीवियों की इस सरकार पर जो प्रतिक्रिया छपी है, उसमें से कुछ की बड़ी शर्मनाक है जो कि उनके इस सरकार के आने के पहले के रुख से बिल्कुल भिन्न है। अगर वे पहले सही थे तो अब गलत क्या सिर्फ इसलिए हो गए कि उनकी इच्छा-आकांक्षा, उनके सोच-विचार के बावजूद इस पार्टी, इस गठबंधन को बहुमत मिल गया है?

लेकिन ऐसा तो नहीं था कि पहले यह संभावना नहीं थी, इसलिए विरोध किया जा रहा था और अब अचानक यह संभावना पैदा हो गई है! अगर मान लें कि ऐसा भी है तो इससे अंतर क्यों पड़ना चाहिए? अगर पहले मोदी के विरोध के ठोस तार्किक आधार थे, तो अब उनके प्रधानमंत्री बन जाने के अलावा और

ऐसा क्या हो गया है, जो इनमें से किसी के भी विचार यकायक बदल जाएं!

विचारों में किसी को परिवर्तन करना तभी जरूरी लग सकता है, जब सरकार काम करना शुरू करे और मतदाताओं के इस वर्ग की उस पार्टी, संगठन और उस नेता के बारे में पूर्वधारणाओं को ध्वस्त कर दे। अगर मोदी और भाजपा से बुनियादी किस्म की असहमतियां हैं तो उनकी सरकार बन जाने मात्र से वे भहरा कर कैसे ढह सकती हैं, कैसे वे अंतर्विरोध हवा हो जा सकते हैं जो उस पार्टी और विचारधारा की बुनियाद में हैं। किसी नई स्थिति का सम्यक विश्लेषण करना अलग बात है और परिस्थितियों के अनुसार अपने विचार बदल लेना बिल्कुल अलग और बेहद ओछी बात है।

यह अवसरवाद से भी अधिक घटिया है और दूसरों से ज्यादा खुद के साथ बेईमानी है। हमने बिल्कुल मान लिया है कि हमारे नेता अक्सर ऐसा किया करते हैं। मगर जो अपने आपको बुद्धिजीवी मानते और कहते हैं, जो अपने को लेखक कवि मानते और कहते हैं, उनकी अवधारणाएं रातोंरात कैसे बदल सकती हैं, कैसे वे जीतने वाले के साथ अपने को फटाफट जोड़ सकते हैं। किसी पर तो भरोसा किया जाए कि वह नहीं बदलेगा या बदलेगा तो बदलने का विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करेगा।

उदाहरण यू अनंतमूर्ति का लें। उनकी उस बात का मजाक भाजपाई अब उड़ा रहे हैं कि अगर मोदी सरकार बन गई तो वे देश छोड़ देंगे। लेकिन अनंतमूर्ति के ही क्यों, किसी भी मोदी-विरोधी को इस मौके पर अकेले कर दिए जाने, उसका मजाक बना दिए जाने, उसे अपमानित किए जाने के लिए तैयार नहीं होना चाहिए और इस स्थिति में भी अपना प्रतिरोध जारी रखना चाहिए।

भाजपा-संघ परिवार तो अपमान करने की उस हद तक भी जाते रहे हैं कि जिस हद तक वे हुसेन के मामले में गए थे। लेकिन क्या हर बात आज से इसीलिए कही जाएगी कि उसका हर वक्त, हर जगह स्वागत ही होना चाहिए? क्या हर वक्त फूलमालाएं ही गले में पड़नी चाहिए, विरोध को सहने के लिए तैयार नहीं रहना चाहिए?

बहरहाल, केंद्र में मोदी और आडवाणी के अलावा किसी और भाजपाई नेता के नेतृत्व में सरकार बनती तो उससे हमारी असहमति विचारधारात्मक अधिक होती, जिसे हममें से बहुत-से लोग देश के लिए घातक मानते आए हैं। हम मानते आए हैं कि यह विचारधारा एक तरह से केवल भारत नहीं, मानवता के बुनियादी विचार के ही खिलाफ है। लेकिन मोदी के आने से एक बात और इसमें विशेष रूप से जुड़ गई है कि 2002 में जो कुछ गुजरात में उनके मुख्यमंत्री रहते हुए हुआ, जो जनसंहार हुआ, उसके लिए वे पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

हालांकि बात को इस तरह कहना भी दरअसल इसे बहुत ही नरम ढंग से रखना है। भले ही तमाम कारणों से लोगों ने उनके नेतृत्व में आस्था प्रकट की है, मगर इस जनसंहार की जिम्मेदारी से वे कैसे बच सकते हैं, भले ही नई स्थितियों में कानूनन भी उनका कुछ न बिगड़ पाए या उनके स्वागत में जगह-जगह लोग पलक-पांवड़े बिछाए रहें।

एक बात और। यों भले ही भाजपा को लोकसभा में दो सौ बयासी सीटें मिली हों और राजग को कुल तीन सौ छत्तीस सीटें और इस सरकार के स्थिर रहने की पूरी संभावना है। मगर कुछ दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर न हमारा ध्यान पहले जाता था, न इस जीत से आतंकित होने के कारण अब पर्याप्त रूप से जा पा रहा है। मोदी के सघनतम प्रचार अभियान के बाद और तरकश का हर तीर आजमा लेने के बाद भाजपा को अकेले भले ही स्पष्ट

बहुमत मिल गया है, मगर यह भी उतना ही सच है कि उसे महज इकत्तीस फीसद वोट मिले हैं और राजग के वोट भी कुल सा□े अ□तीस फीसद हैं□ यानी सा□े इकसठ फीसद मतदाताओं ने, यानी देश के बहुमत ने इस सरकार को नकारा है□

हम इसके कारणों में नहीं जा रहे हैं□ मगर कारण जो भी हों, क्या यह □क तथ्य नहीं है और क्या इसलि□ इसे भूल जाना जरूरी है कि इससे किसी सीट विशेष पर किसी उम्मीदवार की जीत या हार पर आधारित संसदीय व्यवस्था में सरकार की वैधता पर कोई फर्क नहीं प□ता? यह बात सही होते हु□ भी इस सरकार के लि□ ही नहीं, बल्कि किसी भावी सरकार के लि□ भी यह □क महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि भले ही उसके पास सीटों का बहुमत हो, मगर मतदाताओं की संख्या का भी हो, यह जरूरी नहीं□ अक्सर उस दल या सरकार से सहमत मतदाताओं की अपेक्षा उससे असहमत मतदाताओं का बहुमत ब□ा होता है और उनके प्रति सरकार की ज्यादा ब□ी जिम्मेदारी है, क्योंकि लोकतांत्रिक चुनाव पद्धति का बहुमत □क दूसरी तरह से उस सरकार के साथ नहीं है□

चुनावी आंक□े यह महत्त्वपूर्ण बात भी बताते हैं कि इससे पहले किसी भी □क पार्टी की सरकार इतने कम प्रतिशत वोट पाकर नहीं बनी है□ यही नहीं, निश्चित रूप से सीटों की दृष्टि से कांग्रेस की हालत इस बार ऐतिहासिक रूप से पतली है, लेकिन □क दिलचस्प बात यह भी है कि 2009 में वोट प्रतिशत के मामले में भाजपा की स्थिति इससे भी विकट थी□ उसे महज सा□े अठारह फीसद वोट मिले थे□ हालांकि सीटें □क सौ सोलह मिल गई थीं□ जबकि इस बार उससे करीब □क प्रतिशत अधिक वोट पाकर भी कांग्रेस को महज चौवालीस सीटें मिली हैं□ इससे सरकार की वैधानिक स्थिति पर कोई अंतर नहीं प□ता, मगर ये आंक□े सरकार और तमाम जनतांत्रिक ताकतों को □क और सच से अवगत कराते हैं और यह सच भी महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है□

इसके अलावा, कई क्षेत्रीय दलों को लोकसभा चुनाव में वहां के मतदाताओं ने उससे भी भारी समर्थन दिया है जो मोदी को लोकसभा के लि□ मिला है□ क्या किसी भी केंद्र सरकार को इस तथ्य की उपेक्षा करनी चाहि□? क्या ऐसा करना व्यापक राष्ट्रीय हित में होगा? यों सीट आधारित बहुमत की मौजूदा व्यवस्था की विसंगतियों पर भी विचार का समय आ गया है और इसका भी कि क्या कुछ ज्यादा सीटों वाले प्रदेशों को ही पूरे भारत के बारे में राजनीतिक फैसले लेने का हक होना चाहि□? क्या ऐसी पद्धति विकसित की जानी चाहि□ कि केंद्र की सरकार से अलग राह पर जिन राज्यों के मतदाता चले हैं, उनकी भी राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय में बराबर की भागीदारी हो, भले ही उनके द्वारा समर्थित दलों की केंद्र सरकार में भागीदारी हो या न हो!

फेसबुक पेज को लाइक करने के लि□ क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लि□ क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta